A registered Political Party
ECI Registration No. 56/89/2011/PPS-I

मैं ही भारत का घोषणापत्र

डॉ. सुबोध चन्द्र राय
M.Sc., Ph.D., LL.B.
राष्ट्रीय अध्यक्ष

भारत, अर्थात इंडिया, स्वयं को एक स्वतंत्र, संप्रभु, लोकतांत्रिक राष्ट्र घोषित करता है। लोकतंत्र का एक मूल सिद्धांत बहुमत की इच्छा के अनुसार शासन करने का आदेश देता है, उनकी आकांक्षाओं की पूर्ति अनिवार्य करता है। यदि हम भारत को एक कार्यरत लोकतंत्र के रूप में स्वीकार करते हैं, तो यहाँ जो कुछ भी होता है, उसे इस बहुमत की इच्छा की प्रत्यक्ष अभिव्यक्ति के रूप में व्याख्यायित किया जाना चाहिए। इसलिए, लाखों लोगों को पीड़ित करने वाली व्यापक भूख, निरक्षरता, बेरोजगारी और अस्वस्थता, कानूनी अधिकार के आवरण में राज्य की मनमानी और बेतरतीब कार्रवाई, और

समाज के हर स्तर पर व्याप्त व्यापक, स्थानिक भ्रष्टाचार—इन सभी को हमारी पूर्ण, निस्संदेह चुप्पी की आवश्यकता है। क्योंकि, यदि लोकतंत्र के इस दिखावे में कोई सच्चाई है, तो इनमें से कोई भी घृणित वास्तविकता हमारी स्पष्ट, सामूहिक सहमति के बिना मौजूद नहीं हो सकती।

जिस प्रकार एक पिता अपने परिवार का भरण-पोषण करता है, उसी प्रकार किसान पूरे राष्ट्र का पोषण करते हैं। यह तर्कसंगत रूप से सामूहिक कृषक समुदाय को "राष्ट्रपिता" की उचित उपाधि तक पहुँचाता है। फिर भी, जब हम भूख और कर्ज से मजबूर होकर सैकड़ों हजारों किसानों की आत्महत्या की भयावह वास्तविकता का सामना करते हैं, तो यह तथाकथित लोकतांत्रिक भारत अपनी घोर बदनामी को कहाँ छिपा सकता है? यह स्पष्ट विरोधाभास केवल एक ही व्याख्या स्वीकार करता है: लोकतंत्र के बहाने, इस राष्ट्र के लोग एक निरंतर, घृणित तमाशे के शिकार हैं।

मूल मुद्दे पर आने से पहले, आइए भ्रष्टाचार की व्यापक समस्या पर विचार करें। जनता हर कीमत पर इसके उन्मूलन की माँग करती है, इसे राष्ट्रीय प्रगति की प्राथमिक बाधा बताती है। देश से अवैध रूप से बाहर भेजे गए अरबों रुपये की वापसी की मांग की जाती है। लेकिन यहाँ एक महत्वपूर्ण प्रश्न उठता है: क्या इसका तात्पर्य यह है कि इस राष्ट्र का बहुमत स्वभाव से बेईमान है?

अन्यथा, एक कथित लोकतंत्र के भीतर ऐसी प्रणाली कैसे बनी रह सकती है? इतनी बड़ी राशि स्थापित कानूनी माध्यमों से गुजरे बिना विदेश नहीं भेजी जा सकती, जिसका तात्पर्य इस लूट के लिए बहुमत की निहित सहमति है। यह एक सर्वविदित सत्य है कि एक छेद वाला बर्तन पानी नहीं रोक सकता, फिर भी हम ठीक ऐसे ही बर्तन में पानी डालते रहते हैं। इस त्रुटिपूर्ण प्रणाली को या तो ठीक करने या बदलने से इनकार करके, हम निरंतर, व्यापक बर्बादी की गारंटी देते हैं।

लेकिन जिस प्रकार नमक को उसकी खारापन से अलग नहीं किया जा सकता, उसी प्रकार भ्रष्टाचार को इस राष्ट्र से मिटाया नहीं जा सकता। ऐसा इसलिए है क्योंकि अन्याय इस राज्य की नींव बनाता है। इसे समझने के लिए, हमें उन नियमों और विनियमों के वास्तविक उद्देश्य की जांच करनी चाहिए जिन्हें हम "कानून" कहते हैं। सदियों तक, अंग्रेजों ने इस भूमि पर एक ही उद्देश्य से शासन किया: इसके संसाधनों का निर्बाध शोषण और लूट। जिस प्रकार कोई व्यक्ति शरीर के अंगों को अधिक आसानी से खून निकालने के लिए बांध सकता है, उसी प्रकार भारतवर्ष के लोग असंख्य कानूनों से बंधे हुए थे। इन कानूनों ने उन्हें प्रभावी रूप से ब्रिटिश साम्राज्य का गुलाम बना दिया।

इस उत्पीड़न के बावजूद, कई लोगों ने स्वतंत्रता का सपना देखने का साहस किया, फांसी द्वारा मृत्युदंड

सहित अकथनीय यातनाएँ सही। औपनिवेशिक शासकों ने पंजाब के जलियांवाला बाग में हजारों निहत्थे, निर्दोष पुरुषों, महिलाओं और बच्चों के नरसंहार में कोई पश्चाताप नहीं दिखाया, यह वध अंधाधुंध गोलीबारी द्वारा किया गया था। हमें बताया गया कि यह भयावह कृत्य पूरी तरह से "स्थापित कानूनी प्रक्रिया के अनुसार" किया गया था। यह याद रखना महत्वपूर्ण है कि ये "कानून" ब्रिटिश संसद द्वारा इस भूमि के लोगों के मन से स्वतंत्रता और मुक्ति के किसी भी विचार को मिटाने के स्पष्ट इरादे से बनाए गए थे।

अनगिनत पुस्तकें घोषणा करती हैं कि 15 अगस्त, 1947 को "भारत" नामक क्षेत्र एक स्वतंत्र राष्ट्र के रूप में उभरा, जिसने हमारे श्रद्धेय स्वतंत्रता सेनानियों के सपनों को पूरा किया। हालाँकि, एक नज़दीकी नज़र से पता चलता है कि उस दिन, अनगिनत अन्य ब्रिटिश कानूनों की तरह, केवल एक और अधिनियम—"भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम, 1947"—लागू हुआ। जब सवाल किया जाता है, तो लगभग किसी ने भी व्यक्तिगत रूप से इस अधिनियम को देखने का दावा नहीं किया है। उन्होंने बस अखबारों में पढ़ा या रेडियो पर सुना कि उस दिन देश "स्वतंत्र" हो गया। वास्तव में, इस अधिनियम ने "भारत" को एक स्वतंत्र देश के रूप में स्थापित नहीं किया। पूर्व ब्रिटिश क्षेत्र "भारत" के भीतर, अधिनियम ने केवल दो "नए डोमिनियन" बनाए: "भारत" और "पाकिस्तान"। जहाँ पहले एक उपनिवेश, "भारत" था,

उसे केवल दो भागों में विभाजित कर दिया गया—आवश्यक रूप से प्रशासनिक सुविधा के लिए दो उपनिवेश बनाना, जिन्हें कानूनी भाषा में "नए डोमिनियन" कहा गया। महत्वपूर्ण रूप से, अधिनियम में यह निर्धारित किया गया था कि प्रत्येक डोमिनियन के कार्यकारी प्रमुख—गवर्नर-जनरल—को चुनने की शक्ति संबंधित डोमिनियन के लोगों के पास नहीं थी। इसके बजाय, ब्रिटिश सम्राट ने गवर्नर-जनरल नियुक्त किया, जैसा कि भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम, 1947 की धारा 5 में स्पष्ट रूप से कहा गया है।

यह एक चौंकाने वाला तथ्य है कि जबकि अधिनियम का शीर्षक "भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम" है, "स्वतंत्रता" शब्द स्वयं इसके पाठ में कहीं भी प्रकट नहीं होता है। एक साल पहले, 1946 में, ब्रिटिश सरकार ने डोमिनियन के लिए एक संविधान का मसौदा तैयार करने के लिए संविधान सभा की स्थापना की। यह याद रखना महत्वपूर्ण है कि इस संविधान सभा के सदस्यों में से कोई भी "भारत का नागरिक" नहीं था। "भारत का नागरिक" शब्द पहली बार "भारत के संविधान" में प्रकट हुआ, जो 26 जनवरी, 1950 को लागू हुआ। कम से कम उस तारीख तक, ब्रिटिश क्षेत्र के सभी निवासी कानूनी रूप से ब्रिटिश प्रजा थे। इसलिए, उस संविधान में निहित सब कुछ स्वाभाविक रूप से ब्रिटिश सम्राट की इच्छा के अधीन था। यही संविधान देश का सर्वोच्च कानून बना हुआ है, और यदि चाहा भी जाए, तो इसे इस देश के

स्वतंत्र नागरिकों द्वारा एक नए संविधान से प्रतिस्थापित नहीं किया जा सकता है। ऐसा इसलिए है क्योंकि संविधान को बदलने का कोई भी प्रयास सर्वोच्च न्यायालय के एक फैसले द्वारा अवरुद्ध कर दिया जाएगा जो इसके "मूल विशेषताओं" में संशोधनों को प्रतिबंधित करता है। और हम यह न भूलें कि सर्वोच्च न्यायालय स्वयं उसी संविधान के एक प्रावधान के तहत बनाया गया था।

यह दर्शाता है कि पूर्व औपनिवेशिक आकाओं ने स्वयं को शासित करने के सटीक तंत्र भी तय किए हैं। इस वास्तविकता को देखते हुए, हमारी स्वतंत्रता कहाँ है? इसे और स्पष्ट रूप से समझाने के लिए, इस सादृश्य पर विचार करें: एक भूमि बिक्री की कल्पना करें जहाँ विक्रेता यह निर्धारित करता है कि वह अपने "परोपकार" से भूमि पर एक झोपड़ी बनाएगा, और खरीदार, खरीद के बाद, उस झोपड़ी में रहने के लिए बाध्य है। खरीदार जरूरत पड़ने पर झोपड़ी की मरम्मत कर सकता है, लेकिन उसे इसे गिराने—अर्थात, इसकी "मूल विशेषताओं" को बदलने—और, मान लीजिए, एक पक्का घर बनाने से सख्त मनाही है। यदि यह शर्त बिक्री पूरी होने के बाद भी बनी रहती है, तो कानून की नज़र में, बिक्री शून्य है, क्योंकि भूमि पर विक्रेता का नियंत्रण पूरी तरह से नहीं छोड़ा गया है।

मान लेते हैं कि उस उथल-पुथल भरे दौर में जब यह उपमहाद्वीप भारी उथल-पुथल से गुजर रहा था, ऐसी शर्त को स्वीकार करना संकट से निपटने का एकमात्र तरीका लग सकता था। हालाँकि, उस स्थिति में, संविधान में एक अनुच्छेद शामिल करने की आवश्यकता थी जिसमें स्पष्ट रूप से कहा गया हो कि "स्वतंत्रता" के बाद, संसद के पास संविधान की पुष्टि करने और यदि आवश्यक हो, तो पुराने को बदलने के लिए एक नया बनाने की शक्ति होगी। जैसा कि स्पष्ट रूप से स्पष्ट है, संविधान के भीतर ऐसा कोई पुष्टिकरण अनुच्छेद मौजूद नहीं है। इसका मतलब है कि "भारत" नामक ब्रिटिश डोमिनियन के लिए बनाया गया एक संविधान, और ब्रिटिश सम्राट के लिए उपयुक्त, लोगों पर देश के सर्वोच्च कानून के रूप में थोपा गया है। यह हमारे सम्मानित स्वतंत्रता सेनानियों के सपनों के बिल्कुल विपरीत है, जिन्होंने भारत के लोगों को ब्रिटिश शासन और शोषण से मुक्त करने की मांग की थी। इस मुक्ति के लिए मूलभूत आवश्यकता "कानून" नामक दमनकारी ब्रिटिश निर्मित बेड़ियों को तोड़ना था, जो ब्रिटिश प्रजा को स्थायी अधीनता में रखने के लिए डिज़ाइन किए गए थे।

15 अगस्त, 1947 के बाद भी, और यहाँ तक कि 26 जनवरी, 1950 के बाद भी, "भारत" के रूप में जाने जाने वाले क्षेत्र में ब्रिटिश निर्मित अधिकांश कानून लागू रहे। "संविधान" के भीतर के प्रावधानों के माध्यम से, इन ब्रिटिश निर्मित कानूनों को एक नया जीवन दिया गया,

जिससे उन सभी बाधाओं को बनाए रखा गया जिन्होंने सदियों से आबादी को गतिहीन रखा था। नतीजतन, देश को बेरहमी से लूटा जा रहा है, लोग उन कानूनों द्वारा चतुराई से फंसे हुए हैं जिन्हें वे मुश्किल से समझते हैं। वर्तमान अनुमान बताते हैं कि किसी भी समय भारतीय अदालतों में लगभग तीस मिलियन मामले लंबित हैं। यह मानते हुए कि प्रत्येक मामले से प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से कम से कम दस लोग प्रभावित होते हैं, इसका मतलब है कि भारत में लगभग तीन सौ मिलियन लोग कानूनी चिंताओं से स्थायी रूप से बोझिल हैं। इसलिए, यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि तथाकथित "समावेशी विकास" के बारे में लगातार बयानबाजी के बावजूद, जो हम हर साल सुनते हैं, उनकी परिस्थितियों में सुधार नहीं होता है।

यह तथ्य कि हमने अभी तक सच्ची मुक्ति प्राप्त नहीं की है, हमारे दैनिक जीवन में स्पष्ट है। 15 अगस्त, 1947 से पहले, ब्रिटिश शासन के खिलाफ अहिंसक और हिंसक दोनों विरोध प्रदर्शन आम थे, और रॉयल पुलिस नियमित रूप से स्वतंत्रता सेनानियों के साथ क्रूर उत्पीड़न करती थी। यह उस समय समझ में आता था, क्योंकि पुलिस, क्राउन के सेवकों के रूप में, संप्रभु के हितों की रक्षा के लिए बेरहमी से कार्य करने के लिए बाध्य थी। हालाँकि, यह बहुत परेशान करने वाला है कि भारत के कथित तौर पर राजनीतिक रूप से स्वतंत्र होने के बाद भी इसी तरह की पुलिसिया बर्बरताएँ व्याप्त हैं।

यदि यह स्वतंत्रता वास्तविक है, तो पुलिस अब किसके हितों की रक्षा कर रही है? यदि लोकतंत्र ने वास्तव में लोगों को भूमि का स्वामी बना दिया है, तो ये वही लोग विरोध क्यों कर रहे हैं? यदि, जैसा कि लोकतंत्र में होता है, हम कानून बनाने वाले हैं, तो हमें उन कानूनों को तोड़ने के लिए क्या मजबूर करता है जो हमने बनाए हैं? अब इन सवालों का सीधे सामना करने का समय आ गया है, और हमें—इस भूमि के लोग, हम सभी, केवल मनुष्य के रूप में—स्वयं ऐसा करना चाहिए।

इस संदर्भ में, हमें "देश" शब्द के सही अर्थ की जांच करनी चाहिए। मनुष्यों द्वारा बसाया गया एक क्षेत्र जिसे हम "देश" कहते हैं। मनुष्यों के बिना, एक देश का अस्तित्व नहीं हो सकता। उदाहरण के लिए, अपने विशाल विस्तार के बावजूद, चंद्रमा एक देश नहीं है क्योंकि यह निर्जन है। यह "मनुष्यों" और "देश" के बीच घनिष्ठ संबंध को दर्शाता है। तार्किक रूप से, तो, एक देश का विकास उसके लोगों की प्रगति को प्रतिबिंबित करना चाहिए, क्योंकि एक देश उन लोगों को पीछे छोड़कर आगे नहीं बढ़ सकता जो इसका गठन करते हैं। यह अक्सर दावा किया जाता है कि इस देश के अधिकांश लोग उन्नति के कुछ कृत्रिम पैमाने पर "पिछड़ रहे हैं"। यह एक जानबूझकर किया गया गलत बयानी है। इस निर्मित भेदभाव को कायम रखने के लिए, बहुमत को जानबूझकर नुकसान की स्थिति में रखा जाता है। समाज की शुरुआत से ही, भेदभाव के बीज सावधानीपूर्वक बोए

गए थे ताकि एक विशेषाधिकार प्राप्त कुछ लोग मेहनतकश जनता के श्रम का लाभ उठा सकें।

यदि जिन लोगों का श्रम अपरिहार्य है, वे एक एकजुट इकाई के रूप में एकजुट हो जाएँ, तो विशेषाधिकार प्राप्त कुछ लोग अब समाज के विशाल बहुमत पर अपना प्रभुत्व बनाए नहीं रख सकते। इसलिए, आबादी के बीच भेदभाव को बढ़ावा देकर, उन्हें खंडित, कमजोर व्यक्तियों में बदल दिया गया है। इस प्रकार, वे शायद ही कभी उन कष्टों पर सवाल उठाने का साहस करते हैं जो उन्होंने सदियों से सहे हैं। यह सिलसिला तब तक जारी रहेगा जब तक कि कुछ गहराई से बैठी, पारंपरिक विचारों में भारी बदलाव नहीं किया जाता—और इस बदलाव को लाने की शक्ति स्वयं लोगों में निहित है। देश को बदलने के लिए, पहले स्वयं को बदलना होगा, जिसके लिए स्वतंत्र विचार की क्षमता की आवश्यकता होती है। लेकिन मनुष्यों के बिना, देश की अवधारणा ही अर्थहीन है। इसलिए, देश के भीतर किसी भी मानवीय कार्रवाई के लिए, स्वयं लोग ही जिम्मेदार होते हैं। चूँकि "हम" "मैं" का बहुवचन है, मैं, वास्तव में, देश हूँ। मैंने इसे सीधे बनाया है। मेरे बिना, कोई देश नहीं हो सकता!

कोई पूछ सकता है, "क्या इतना छोटा सा विचार वास्तव में देश की वर्तमान स्थिति में सुधार कर सकता है?" जवाब एक जोरदार हाँ है क्योंकि "मैं" में बदलाव अनिवार्य रूप से देश में बदलाव का प्रतीक है। तब भी,

कोई आपत्ति कर सकता है, "अगर यह विचार इतना शक्तिशाली है, तो लोगों का दुख बहुत पहले ही खत्म हो गया होता। इसके अलावा, देश ने अंतरिक्ष प्रौद्योगिकी में उल्लेखनीय प्रगति करते हुए भी काफी प्रगति की है। आपके तर्क से, इसका मतलब लोगों के जीवन स्तर में पर्याप्त सुधार होना चाहिए।" जवाब में, हमें यह स्वीकार करना होगा कि इस प्रगति के लाभ केवल आबादी के एक छोटे से हिस्से द्वारा उठाए जाते हैं, जबकि विशाल बहुमत बाहर रहता है। भुखमरी, कुपोषण और आत्महत्याएँ अभी भी बहुमत में व्याप्त हैं। इस असमानता का मूल कारण केवल यह है कि "मैं ही देश हूँ" का विचार अभी तक समाज में नहीं फैला है।

यह ठीक इसी चेतना की कमी है जो देश की दयनीय स्थिति को बदलने से रोकती है। यदि लोग इस अहसास के प्रति जागृत हो जाएँ, तो यह निस्संदेह क्रूर शोषण पर आधारित एक सामाजिक व्यवस्था में महत्वपूर्ण उथल-पुथल पैदा करेगा। ऐसी स्थिति को रोकने के लिए, मुट्ठी भर शोषक जानबूझकर इस विचार को काल्पनिक कहकर खारिज कर देते हैं। उन्हें डर है कि अगर लोगों ने समाज में अपनी वास्तविक स्थिति को पहचान लिया तो उनकी पूरी भ्रष्ट इमारत ताश के पत्तों की तरह ढह जाएगी। लेकिन सच्चाई यह है कि यह विचार न केवल काल्पनिक नहीं है, बल्कि इस तथाकथित सभ्य व्यवस्था को ध्वस्त करने का एक उल्लेखनीय रूप से सरल तरीका भी है। इस स्पष्ट मार्ग को छिपाने के लिए, शुरू से ही

अधिकांश लोगों को निरक्षरता और गरीबी के अंधेरे में रखने के प्रयास किए गए हैं। अब बाहर निकलने का रास्ता खोजने का समय आ गया है, और हम सभी को इस लक्ष्य की ओर प्रयास करना चाहिए, क्योंकि हम ही इस देश के साक्षात रूप हैं!

इस देश के हालात को जटिल सिद्धांतों का सहारा लिए बिना समझने के लिए, आइए एक बड़े घर की सादृश्यता का उपयोग करें जहाँ एक जीवंत उत्सव चल रहा है। रात का समय है, घर रोशनी से जगमगा रहा है, और मेहमान आनंद ले रहे हैं। अचानक, दुर्भावनापूर्ण इरादे से, कोई मुख्य बिजली की आपूर्ति काट देता है। पूरा घर अंधेरे में डूब जाता है, और तुरंत ही अराजकता फैल जाती है। लोग डर जाते हैं और भागने की कोशिश करते हैं, लेकिन अंधेरा उन्हें बाधित करता है, जिससे भ्रम और घबराहट पैदा होती है। वे एक-दूसरे पर ठोकर खाते हैं, फर्नीचर उलट जाता है, और सामान्य अव्यवस्था का माहौल बन जाता है। तब सवाल यह उठता है: हम इस प्रतीत होने वाले अंतहीन अराजकता से कैसे बचें?

विद्युत से अपरिचित लोगों के लिए, इस अराजकता को हल करना अविश्वसनीय रूप से कठिन लग सकता है। कुछ लोग इस स्थिति को नीचता और स्वार्थ जैसे नकारात्मक मानवीय लक्षणों के लिए भी जिम्मेदार ठहरा सकते हैं। हालाँकि, समाधान उल्लेखनीय रूप से सरल है: किसी को केवल मुख्य बिजली के स्विच को वापस "चालू"

करना है। रोशनी की मात्र वापसी अंधेरे के कारण हुई अराजकता को तुरंत दूर कर देगी। इसी तरह, इस विशाल भूमि की सभी समस्याओं का मूल कारण हमारे मनों के भीतर अज्ञान के अंधेरे में छिपा है। जब तक इस अज्ञान को मिटाया नहीं जाता, ये समस्याएँ अनिश्चित काल तक बनी रहेंगी, और हम अंधेरे में एक-दूसरे को दोस्त के रूप में पहचानने में असमर्थ, दुश्मनों के रूप में एक-दूसरे से लड़ते रहेंगे। लेकिन हमें समझना होगा: किसी ने जानबूझकर रोशनी बंद नहीं की है। मानव सभ्यता के इतिहास में, पूर्ण जागरूकता की रोशनी वास्तव में कभी चालू नहीं हुई है। यही कारण है कि दुनिया के अधिकांश लोग स्वतंत्र विचार से वंचित रहे हैं। हालाँकि, हम अपनी सच्ची आंतरिक शक्ति के प्रति जागरूक होने के इस प्रतीत होने वाले असंभव कार्य के लिए खुद को समर्पित करने के लिए दृढ़ हैं। और इसके लिए समय अब आ गया है।

इसकी शुरुआत के लिए, आइए इस देश के नाम पर विचार करें। प्राचीन काल से, इसे "भारतवर्ष" के नाम से जाना जाता था। सिंधु नदी के तट पर एक सभ्यता विकसित हुई, जिसे विदेशी भाषाओं में सिंधु घाटी सभ्यता के नाम से जाना जाने लगा। हालाँकि, इस सभ्यता के उदय से पहले भी, इस भूमि के दक्षिणी भाग में एक अत्यंत उन्नत सभ्यता पहले से ही मौजूद थी, जैसा कि महाकाव्य रामायण में वर्णित है। फिर भी, विदेशी आक्रमणकारियों ने अपने उद्देश्यों के लिए, पूरी

भूमि को शामिल करने के लिए "सिंधु घाटी सभ्यता" शब्द गढ़ा और देश का नाम "इंडिया" रखा। अजीब बात है कि "स्वतंत्रता" के बाद भी, इस महान प्राचीन भूमि को आधिकारिक तौर पर "इंडिया" ही कहा जाता है। जबकि व्यक्तियों के कई नाम हो सकते हैं, एक ही भूमि के दो आधिकारिक नाम कैसे हो सकते हैं: "इंडिया" और "भारत"?

हमारे गहरे बैठे अधीनता का एक स्पष्ट उदाहरण स्वयं संविधान में मिलता है, जहाँ देश का नाम "इंडिया, दैट इज भारत" है। यह बताना ज़रूरी है कि वाक्यांश "भारत, दैट इज इंडिया" नहीं है। नाम "इंडिया" को प्राथमिकता दी गई है, शायद हमारे पूर्व ब्रिटिश शासकों की सुविधा के लिए। चूँकि हम स्वयं को वास्तव में स्वतंत्र घोषित करते हैं, हमें "इंडिया" को अस्वीकार करते हुए "भारत" को अपने देश के एकमात्र नाम के रूप में अपनाना चाहिए। कई लोगों ने "महाभारत" का अध्ययन किया है, लेकिन किसी ने भी "महाइंडिया" नामक किसी चीज़ के बारे में कभी नहीं सुना है। आइए हम अपने भारत से "इंडिया" शब्द को निकाल दें, क्योंकि यह हमारे अतीत की गुलामी के निशान के अलावा और कुछ नहीं है।

क्योंकि सच्ची जागरूकता की मोमबत्ती कभी नहीं जलाई गई, लोगों ने वास्तव में कभी स्वतंत्रता का अनुभव नहीं किया है। संगठित समाज की शुरुआत से ही, नियंत्रण शक्ति "राजा" के हाथों में निहित रही है। उसके आदेश

कानून बन गए; उसका शब्द अंतिम था। लेकिन हम यह पहचानने में विफल रहते हैं कि राजा का "राजत्व," सभी कानूनों का कथित स्रोत, स्वयं मौलिक रूप से नाजायज है। आइए हम फिर से दोहराएँ: हम इस मामले को जटिल या सुरुचिपूर्ण सिद्धांतों का सहारा लिए बिना, सीधे तौर पर संबोधित करेंगे।

इस बात को समझाने के लिए, आइए प्रागैतिहासिक काल के एक दिन की कल्पना करें, मानव समाज के गठन से भी पहले। एक छोटी सी नदी बहती है, और उसके किनारे पर एक आम का पेड़ खड़ा है। एक आदमी पेड़ पर चढ़ रहा है, आम तोड़ रहा है। थोड़ी दूर पर, एक और आदमी मछली पकड़ रहा है। तभी एक तीसरा आदमी प्रकट होता है। कुछ देर तक उन्हें देखने के बाद, वह पेड़ पर चढ़े आदमी के पास जाता है और पूछता है, "आप क्या तोड़ रहे हैं, मेरे दोस्त?" आदमी जवाब देता है, "फल। क्या आप एक चखना चाहेंगे?" अजनबी एक पका हुआ आम लेता है, उसे स्वादिष्ट पाता है, "आम-आदमी" को धन्यवाद देता है, और फिर मछुआरे के पास जाता है। इसी तरह के आदान-प्रदान के बाद, उसे उपहार के रूप में एक मछली मिलती है और वह "मछली-आदमी" को धन्यवाद देता है।

अगले दिन, अजनबी एक दोस्त के साथ वापस आता है। वे पहले आम तोड़ने वाले के पास जाते हैं। यह जानकर कि नवागंतुक भी आम चखना चाहता है, पेड़ पर चढ़ा

आदमी और भी अधिक उत्साह के साथ अपना फल बाँटता है, ऐसा करने में सम्मानित महसूस करता है। फिर वे मछुआरे के साथ भी यही प्रक्रिया दोहराते हैं। ध्यान दें कि बिना किसी प्रयास के आम और मछली का सेवन करके, अजनबी मेहनतकशों की तुलना में लगभग दोगुनी ऊर्जा प्राप्त करते हैं। मेहनतकश पेड़ पर चढ़ने या मछली पकड़ने में अपनी लगभग आधी ऊर्जा खर्च करते हैं, जबकि अजनबी कोई ऊर्जा खर्च नहीं करते। इस तरह, धोखे से, तीसरा व्यक्ति दूसरों के श्रम के फल का उपभोग करके धीरे-धीरे अधिक शक्तिशाली बन जाता है। जैसे-जैसे उसकी ताकत और प्रभाव बढ़ता है, लोग उससे डरने लगते हैं। जो कभी स्वेच्छा से एहसान के रूप में दिया जाता था, वह समय के साथ अनिवार्य "सुरक्षा राशि" बन जाता है, अंततः उसे कानून बनाने वाले और राजा के रूप में स्थापित करता है। यह "कानून के शासन" के बहाने लोगों के राजा द्वारा शोषण की शुरुआत का प्रतीक है।

इस चालाक व्यक्ति ने धोखे से अपने "राजत्व" की शुरुआत की—दूसरे शब्दों में, अवैध रूप से। जो कार्य सद्भावना से दिए गए दान के रूप में शुरू हुए थे, उन्हें राजस्व, या करों की जबरन वसूली में बदल दिया गया। आबादी से इन करों की सुचारू वसूली सुनिश्चित करने के लिए समय के साथ विभिन्न नीतियाँ लागू की गई हैं। ऐसी ही एक प्रणाली, जिसे अब लगभग धर्मग्रंथ का दर्जा दे दिया गया है, को अर्थशास्त्र कहा जाता है। चूँकि

"जिसकी लाठी उसकी भैंस" का सिद्धांत प्रचलित है, राजा कोई गलती नहीं कर सकता और उसे हमेशा निस्संदेह सही माना जाता है। चूँकि संप्रभु का आदेश ही कानून है, कानून का पालन करने वाली प्रजा राजा की आज्ञा का पालन करने के लिए बाध्य है।

लोगों ने स्वेच्छा से राजा की संप्रभुता स्वीकार नहीं की; उन्हें क्रूर बल के माध्यम से अधीनता के लिए मजबूर किया गया था। हालाँकि, राजा अच्छी तरह से जानता है कि उसका अस्तित्व पूरी तरह से आज्ञाकारी प्रजा की उपस्थिति पर निर्भर करता है। तथ्य यह है कि ये प्रजा यह समझने में विफल रहती है कि वे ही सभी शक्ति का वास्तविक स्रोत हैं, कि वे सभी समान हैं और एक ही मानव परिवार से संबंधित हैं, ने इस शोषणकारी प्रणाली की शुरुआत से ही उनके बीच एक विभाजन पैदा कर दिया है। अमीर और गरीब, शिक्षित और अशिक्षित, ऊँचे और नीचे के भेदों से परे, अनगिनत अन्य कृत्रिम श्रेणियां सावधानीपूर्वक गढ़ी गईं, विभिन्न धर्मों, जातियों, आदि का आविष्कार किया गया। इस तरह, लोगों को अनगिनत समूहों में विभाजित कर दिया गया है, ऐसे विभाजन जो कभी मौजूद नहीं थे और प्रकृति में कभी मौजूद नहीं हो सकते थे। भोले-भाले प्रजा, बेमतलब के आपसी झगड़ों में व्यस्त, राजा के इस चालाक पैंतरे को पहचानने में विफल रहे। इस तरह राजशाही के जाल ने मानव समाज को पूरी तरह से निगल लिया। इसे ध्यान में रखते हुए, यह पहचानना महत्वपूर्ण है कि "गरीब"

शब्द एक गलत नाम है। परंपरागत रूप से, एक व्यक्ति को "गरीब" तब कहा जाता है जब वह दैनिक जीवन यापन के लिए संघर्ष करता है—उदाहरण के लिए, एक कोयला खनिक। हर दिन अपनी जान जोखिम में डालकर, वह कोयला निकालने के लिए खदान में उतरता है। कोयले के बिना, क्या कोयला आधारित बिजली संयंत्र हो सकते हैं? क्या कोयले पर निर्भर विशाल उद्योग भी मौजूद हो सकते हैं? अंततः, इस अपार धन का वास्तविक स्रोत वही "गरीब" मजदूर है। तो फिर, हम ऐसे विशाल धन के निर्माता को "गरीब" कहने की हिम्मत कैसे कर सकते हैं?

आइए अब "अशिक्षित" शब्द पर विचार करें। हम, तथाकथित "शिक्षित" लोग, एक किसान या एक मोची को अशिक्षित कैसे कह सकते हैं? हमें कभी यह नहीं लगता कि हम, जो अपनी शिक्षा का बखान करते हैं, उन कार्यों को नहीं कर सकते जो एक किसान या मोची आसानी से करता है। तो क्या हम भी उनके कौशल में निरक्षर नहीं हैं? उनके पास अक्सर औपचारिक शिक्षा की कमी का कारण यह है कि उन्हें ऐसे अवसरों से वंचित रखा गया है। यह जानबूझकर किसी का पैर तोड़ने और फिर उसकी "बदकिस्मती" पर तरस खाने जैसा है।

तथाकथित लोकतंत्र ने राजशाही का अनुसरण किया। राजा की शक्ति से ईर्ष्या से प्रेरित होकर, कुछ व्यक्तियों ने नियंत्रण हासिल करने की साजिश रची। वे समझते थे

कि वास्तविक शक्ति लोगों में निहित है, इसलिए उन्होंने "लोकतंत्र" में "डेमोस" (लोग) शब्द का उपयोग किया, जो स्पष्ट रूप से यह विचार व्यक्त करता है कि लोग सीधे देश के मामलों का प्रबंधन करते हैं। हालाँकि, वास्तविकता यह है कि "लोकतंत्र" राजशाही का ही एक और रूप है। एकमात्र अंतर यह है कि राजशाही की तरह एक राजा के बजाय, "लोकतंत्र" में कई "मंत्री" होते हैं।

राजा के अधिकार को लागू करने के लिए जिस प्रकार गुलामी की बेड़ियों को बनाए रखना आवश्यक था, उसी प्रकार तथाकथित लोकतंत्रों में भी, लोगों की निरंतर लूट सुनिश्चित करने के लिए राजशाही युग के सभी कानूनों को बरकरार रखा गया है। नतीजतन, धन के प्रदाता के रूप में लोगों की भूमिका अपरिवर्तित रहती है, ठीक वैसे ही जैसे राजशाही के अधीन थी। इसलिए, लोकतंत्र में "हम सब राजा हैं" का व्यापक रूप से प्रचारित विचार विशुद्ध रूप से काव्यात्मक कल्पना है, जिसका वास्तविकता में कोई आधार नहीं है। "लोकतंत्र" में, यह कहा जाता है कि लोगों के प्रतिनिधि देश के मामलों का "निर्देशन" करेंगे, लेकिन व्यवहार में, राजनीतिक दलों द्वारा चुने गए कुछ व्यक्ति देश पर "शासन" कर रहे हैं। यह कोई संयोग नहीं है कि हम अभी भी "शासक दल" शब्द का उपयोग करते हैं। कोई यह सवाल नहीं करता कि "स्वतंत्रता" प्राप्त होने के बाद "शासक" कैसे मौजूद हो सकते हैं, या यहाँ तक कि "लोकतंत्र" में "सरकार" शब्द की प्रासंगिकता भी क्या है।

इस देश में जन प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 के अनुसार चुनाव होते हैं, लेकिन जो लोग इन चुनावों में "प्रतिस्पर्धा" करते हैं वे लोगों के सच्चे प्रतिनिधि नहीं हैं। लगभग हर मामले में, वे एक या दूसरे राजनीतिक दल द्वारा नियंत्रित होते हैं। इसलिए, उनकी प्राथमिक जिम्मेदारी लोगों के साथ नहीं, बल्कि अपनी पार्टी के साथ होती है। यह मानना उचित होगा कि सभी चुनाव उम्मीदवार देश के नागरिकों के कल्याण को प्राथमिकता देते हैं। यह भी उम्मीद करना उचित होगा कि राजनीतिक दलों के पास इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए स्पष्ट, सुव्यवस्थित योजनाएँ हों। यदि यह सच होता, तो चुनावों को "जीतने" के लिए इतनी तीव्र प्रतिस्पर्धा क्यों होती है? एक साधारण सादृश्य पर विचार करें: यदि कई लोग एक घर को रंगने के लिए सबसे अच्छे रंग पर चर्चा कर रहे थे, तो एक सफेद, दूसरा गुलाबी और तीसरा ग्रे रंग सुझा सकता है। फिर भी, उन सभी का शायद घर को सुंदर बनाने का एक सामान्य लक्ष्य होगा। यदि वे दुश्मन नहीं हैं, तो राजनीति में यही सहयोगात्मक भावना क्यों मौजूद नहीं है? ऐसा इसलिए नहीं है क्योंकि आपसी शत्रुता बनाए रखना शोषणकारी यथास्थिति को बनाए रखने के लिए आवश्यक है। इसलिए, यह स्पष्ट है कि राज्य प्रणाली में मूलभूत परिवर्तन के बिना, वास्तविक प्रगति और लोगों की स्थिति में सुधार असंभव है। इस बदलाव को हासिल करने के लिए, हमें पहले अपनी कमजोरियों के स्रोतों को खत्म करना होगा।

एक अक्सर यह सोचते हैं कि एक अकेला व्यक्ति पूरी व्यवस्था की जड़ता को कैसे बदल सकता है। सबसे पहले, हम यह पहचानने में विफल रहते हैं कि देश की वर्तमान स्थिति हमारी सामूहिक निष्क्रियता का प्रत्यक्ष परिणाम है। एक बार जब हम कार्य करना शुरू कर देंगे तो यह जड़ता अनिवार्य रूप से समाप्त हो जाएगी। दूसरे, मैं अकेला नहीं हूँ। एक अरब तीस करोड़ से अधिक "मैं" मिलकर वर्तमान "भारत" का गठन करते हैं। प्रत्येक "मैं" दूसरों से घनिष्ठ रूप से जुड़ा हुआ है, ठीक वैसे ही जैसे अनगिनत कोशिकाएँ जो मानव शरीर बनाती हैं। जब शरीर घायल होता है, तो पूरा शरीर एक साथ प्रतिक्रिया करता है, और खरबों कोशिकाएँ आक्रमण के खिलाफ बचाव के लिए एक साथ काम करती हैं। यह अन्य कोशिकाओं से जुड़े होने पर एक अकेली कोशिका की अपार ऊर्जा को दर्शाता है। इसी तरह, हम में से प्रत्येक अपार शक्ति का एक विशाल भंडार है, जिससे हम काफी हद तक अनजान हैं। जब इस भूमि के सभी लोग यह महसूस करेंगे कि हम सभी एक ही परिवार के सदस्य हैं और हम एक-दूसरे के पूरक हैं, तो हमारी सामूहिक चेतना जागृत होगी। ठीक वैसे ही जैसे एक आदर्श परिवार में, भ्रष्टाचार के लिए कोई जगह नहीं होती है, उसी तरह, देश में भ्रष्टाचार के मौजूद रहने का कोई कारण नहीं होगा। जैसे किसी परिवार के सभी सदस्यों द्वारा एक समस्या साझा की जाती है, वैसे ही हम भी देश के किसी भी हिस्से में उत्पन्न होने वाली हर समस्या को साझा करेंगे। कहीं

भी कोई भूखा नहीं रहेगा। यह एक साथ लोगों के मन से घृणा, ईर्ष्या या जलन के सभी कारणों को मिटा देगा।

इसके अलावा, चूँकि दुनिया में मानवता का स्थान सर्वोपरि माना जाता है, इसलिए धन को एक अधीनस्थ स्थान पर होना चाहिए। हालाँकि, वास्तविकता में इसके विपरीत है, इसलिए हमें जानबूझकर धन की भूमिका का पुनर्मूल्यांकन करना चाहिए। मानवता से ऊपर कुछ भी नहीं होना चाहिए, यहाँ तक कि धन भी नहीं। चूँकि "लोकतंत्र" एक गलत नाम है, आइए हम इस आदर्श प्रणाली को एक नया नाम दें। चूँकि लोगों का अस्तित्व एक देश का गठन करता है, हमने बंगाली में "गणसत्ता" शब्द गढ़ा है, यह दर्शाने के लिए कि ऐसी स्थिति में, लोग देश के प्रबंधन के हर पहलू में सर्वोच्च भूमिका निभाएँगे।

तथाकथित "लोकतंत्र" में, लोगों की भूमिका "मतदाताओं" या "निर्वाचकों" तक सीमित कर दी जाती है, जबकि उन पर शासन करने की वास्तविक शक्ति "निर्वाचित" प्रतिनिधियों के पास होती है। एक बार जब ये प्रतिनिधि "निर्वाचित" हो जाते हैं—चाहे किसी भी माध्यम से, उचित या अनुचित—वे व्यवस्था का पूरा नियंत्रण अपने हाथों में ले लेते हैं, और लोग अपनी बदकिस्मती के मात्र मूक दर्शक बन जाते हैं।

गणसत्ता के तहत, इस स्थिति में भारी बदलाव किया जाएगा। चुनाव के बाद भी लोग अपनी वास्तविक शक्ति

का प्रयोग करेंगे। उपयुक्त अधिकारियों द्वारा चुनाव कानून में एक उपयुक्त संशोधन अधिनियमित किया जाएगा, यह सुनिश्चित करते हुए कि एक निर्वाचित प्रतिनिधि केवल मतदाताओं की इच्छा पर ही पद धारण करे। इसका मतलब है कि जब भी वे आवश्यक समझेंगे, लोगों के पास एक निर्वाचित प्रतिनिधि को वापस बुलाने की शक्ति होगी, जिससे भ्रष्टाचार को जड़ से खत्म किया जा सकेगा। इस तरह की वापसी की संभावना मात्र से ही पद पर बैठे लोगों को एक स्पष्ट संदेश भेजकर स्थिति में काफी सुधार होगा।

गणसत्ता के दृढ़ता से स्थापित हो जाने के बाद, हम में से प्रत्येक धीरे-धीरे यह महसूस करेगा कि हमारा अस्तित्व पूरी तरह से दूसरों की भलाई पर निर्भर करता है। हम न तो किसी से ऊपर हैं और न ही किसी से नीचे; हर कोई समान रूप से महत्वपूर्ण है। नतीजतन, हमारे बीच कोई शत्रुता नहीं होगी, ठीक वैसे ही जैसे मानव शरीर में खरबों कोशिकाओं के बीच कोई दुश्मनी नहीं होती है। यह याद रखना ज़रूरी है कि पैर, मस्तिष्क और शरीर का हर दूसरा हिस्सा एक ही कोशिकाओं से बना है, जो उन्हें समान रूप से महत्वपूर्ण बनाता है। फिर भी, यह प्राकृतिक सामंजस्य मानव समाज में अनुपस्थित है। कारण सरल है: अनादिकाल से, लोगों को एकजुट होने से रोकने के लिए, "राजाओं" द्वारा सतही लेबल और वर्गीकरण के माध्यम से कृत्रिम विभाजन बनाए गए हैं। यही कारण है कि वास्तविक मानव "विविधता में एकता"

के भ्रामक, बहुरंगे नारे के नीचे छिपा रहता है। जब यह वास्तविक मानव जागृत होता है और नियंत्रण लेता है, तो गणसत्ता स्थापित होगी, और गणसत्ता में ही दुनिया का भविष्य निहित है।

इस तरह की सामाजिक व्यवस्था स्थापित करने के लिए, "मैं ही भारत" नामक एक राजनीतिक दल का गठन किया गया है। क्योंकि हमें विश्वास है कि इस भूमि के सभी लोग एक ही परिवार से संबंधित हैं, इसलिए कोई वास्तविक बाधाएँ नहीं हो सकतीं, क्योंकि हम सभी देश की समग्र प्रगति की इच्छा रखते हैं। कृपया हमसे जुड़ें, और आइए हम एक साथ आगे बढ़ें। इस देश का भविष्य—जो हमारा भविष्य भी है—ठीक वैसा ही होगा जैसा हम इसकी कल्पना करते हैं, क्योंकि हमारे बिना—मेरे बिना—भारत का कोई अस्तित्व नहीं है।

मैं ही भारत!

"मैं ही भारत" के संविधान से एक अंश

अनुच्छेद II. लक्ष्य और उद्देश्य

पार्टी का केंद्रीय लक्ष्य और उद्देश्य भारत की पूरी आबादी को एक ही बड़े परिवार में एकीकृत करना होगा। उक्त परिवार के सभी सदस्यों को केवल व्यक्तिगत प्राकृतिक मनुष्यों के रूप में मान्यता दी जाएगी जो सभी मामलों में

समान हैं, उन पर लगाए गए किसी भी बाहरी और कृत्रिम भेद को ध्यान में रखे बिना जो उन्हें धर्म, जाति, वर्ण, लिंग, सामाजिक स्थिति आदि से संबंधित हैं जो उन्हें आपस में स्थायी रूप से विभाजित रखते हैं।

पार्टी का दृढ़ विश्वास है कि भारत में रहने वाले मनुष्यों के कष्टों का मूल कारण इस तथ्य में निहित है कि उनमें से विशाल बहुमत को हमेशा निर्णय लेने की मुख्यधारा की प्रक्रिया से दूर रखा जाता है, जबकि केवल मुट्ठी भर लोग शेष आबादी को बुद्धिमान मनुष्यों के बजाय केवल संख्याएँ मानते हुए अपनी पसंद के अनुसार देश के मामलों में हेरफेर करते हैं। चूँकि बिना किसी भौतिक परिवर्तन के दशकों बीत चुके हैं, इसलिए यह उचित समय है कि लोग स्वयं सीधे स्थिति की कमान संभालें ताकि भारत हर क्षेत्र में उत्कृष्ट प्रदर्शन कर सके।

केवल मानव निवासियों की उपस्थिति से ही एक क्षेत्र एक देश में बदल जाता है, इस प्रकार इस देश का प्रत्येक व्यक्ति वास्तव में भारत का पर्याय है। इस अहसास के साथ कि वह स्वयं भारत है, प्रत्येक व्यक्ति में राष्ट्र निर्माण के पवित्र कार्य में शालीनता से आगे आने का अपार आत्मविश्वास पैदा कर सकता है। इसलिए, पार्टी का नाम "मैं ही भारत" है।

इस केंद्रीय विषय द्वारा निर्देशित होकर, पार्टी निम्नलिखित कार्रवाई करेगी:

एक स्वतंत्र व्यक्ति की संप्रभुता का सर्वोच्च सम्मान करना और यह महसूस करना कि उनमें से प्रत्येक की एक समान विरासत है और वह इस भूमि के स्वामियों में से एक है जिसकी स्पष्ट आज्ञा के बिना इस देश में कुछ भी नहीं होगा;

कि गरीबी, निरक्षरता, सामाजिक भेदभाव आदि, जो व्यक्तियों के बीच शत्रुता पैदा करने वाले घर्षण के तत्व मात्र हैं, उन्हें शोषण के लिए स्थायी अधीनता में रखने के लिए जानबूझकर बनाए गए हैं;

कि एक व्यक्ति जिसे गरीब बताया जाता है वह गरीब नहीं है, बल्कि वह धन का एकमात्र स्रोत है;

कि तथाकथित "कानूनों" के नाम पर औपनिवेशिक शासन के दौरान प्रजा को गुलाम बनाने के उपकरण अभी भी अपनी पूरी ताकत से अपने सभी खून चूसने वाले जाल के साथ काम कर रहे हैं, भले ही लोगों को स्वतंत्र कहा जाता है; और

यह भी महसूस करते हुए कि किसी भी मौजूदा प्रणाली को लोगों की आम इच्छाओं के अधीन होना होगा और प्रभुत्व के साधन के रूप में कार्य नहीं कर सकता है, मैं ही भारत, भारत के प्रत्येक निवासी से शालीनता से आगे आने और ताकत के साथ-साथ आत्मविश्वास की स्थिति से देश के मामलों का ध्यान रखने का आह्वान करके प्रचलित सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और कानूनी

प्रणालियों को पूरी तरह से बदलने में हर तरह से सहायक होगा।